आलोचना की नई दृष्टि की तलाश

अरुण माहेश्वरी

आलोचना की नई दृष्टि की तलाश

अरुण माहेश्वरी

प्रकाशक: नॉटनल

प्रकाशन: सितंबर, 2025

© अरुण माहेश्वरी

अनुक्रम

भूमिका : औपनिवेशिक दंश की शिकार हिंदी आलोचना	4
अभिनव मुक्तिबोध : साहित्य का पुनर्संदर्भीकरण	16
अभिनवगुप्त पर ब्राह्मणवाद का ग्रहण : एक नोट	58
कश्मीर की घाटियों में धर्म चर्चा	86
रवींद्रनाथ की अध्यात्म-आधारित विश्व-दृष्टि	98
रवींद्रनाथ और उनके बारे में जॉर्ज लुकाच की कोरी फतवेबाजी का सच	127
गुलजार और रवींद्रनाथ की कविताओं का अनुवाद	153
रवींद्रनाथ की कुल-गोत्रा गाथा	161
समय जैसा है, उसे ही लिखा जाए	179
प्रेमचंद और आज का समय तथा नैतिकता का प्रश्न	191
आधुनिकता, लोकतंत्र और राष्ट्र का निर्माण : एक वामपंथी परिप्रेक्ष्य	202
आम-फहम जीवन के महोत्सवों का गायक पाब्लो नेरूदा	232
नेरूदा की स्त्रियां	245
गैब्रियल गार्सिया मार्केज	279
क्रांतिकारी विचारधारा के परवान चढ़ी कविता का नाम है- सुकांत	298
अतृप्ति का विवेक : शमशेर	331
हमारे महासचिव चंद्रबली जी	342
डॉ. महादेव साहा : एक चुनौती भरा व्यक्तित्व	354

एक सच्चा जनकवि हरीश भादानी 367

आम-फ़हम जीवन के संघर्षों, संकल्प का काव्य : नष्टोमोह 387

गहन अनुभव और तीक्षा कलादृष्टि के योग की अनूठी कृति : अग्निबीज 399

कामरेड इसराइल 423

वाल्मीकि की चिंता : उपलब्धिपूर्ण रचना 433

'सुओरानी' के दुखों की लेखिका प्रभा खेतान 444

पीली आंधी (प्रभा खेतान) और कलिकथा वाया बाईपास (अलका सरावगी) 455

लेखक की विचारधारा का अहम-प्रश्न 469

राजेंद्र यादव के नाम एक पत्र : संदर्भ उदय प्रकाश 486

अंग्रेज़ शासकों का जैविक व्यवहार और वारेन हेस्टिंग का सांड 498

सआदत हसन मंटो और साहित्य की ग़ैर-शास्त्रीय दृष्टि 508

किस्सागोई रचनाशीलता का पर्याय नहीं बन सकती 515

गांडीवधारी की संशयग्रस्तता : एक संवादी से संवाद 529

नीलकांत : वर्ग-च्यूत आत्म-विहीनता का एक सच 550

समीक्षा में उपदेश और फ़तवेबाज़ी 560

साहित्य में विद्रोह-विमर्श : कतिपय टिप्पणियाँ 577

घायल हाथों के रिसते लहू से लिखी गई कविता 585

शैली की वक्रता और कथा शिल्प : संदर्भ मनु जोसेफ़ का नया उपन्यास 594

नवंबर क्रांति की शताब्दी : विजय और समग्रता को भूल विविधता को साधे 602

भूमिका : औपनिवेशिक दंश की शिकार हिंदी आलोचना

हिंदी का अध्यापक जगत सामान्य तौर पर रामचंद्र शुक्ल को एक दैवी प्रतिमा मान कर उसकी सिर्फ परिक्रमा करता रहता है। बहुदेववाद पर आस्था के नाते अपनी पूजा-अर्चना के लिए वह रामविलास शर्मा तथा शायद और भी कुछ गुरुओं की छोटी-बड़ी मूर्तियां बना कर उनकी भी परिक्रमा कर रहा है। जबकि द्वंद्ववाद की पहली शर्त है कि वस्तु के इर्द-गिर्द चक्कर काटने के बजाय उस समग्र का विखंडन करके उसके विकास या पतन के अंतर्विरोधी मार्गों का संज्ञान प्राप्त करना।

आधुनिक हिंदी आलोचना पर गौर करने से बार-बार यह जाहिर होता है कि यह मूलत: आचार्य रामचंद्र शुक्ल के आलोचना सिद्धांतों पर ही आधारित है-साहित्य के इतिहास में काल विभाजन से लेकर साहित्य संबंधी चिंतन में मुख्य रूप से पश्चिमी सौंदर्यशास्त्रीय मानदंडों के प्रयोग पर बल देने तक। ध्यान से देखें तो हम इस तथ्य को अनदेखा नहीं कर सकते हैं कि उनके द्वारा किए गए इस काल विभाजन के मूल में मुसलमानों का निषेध है। उनके बरक्स ही मूलत: शुक्ल जी ने हिंदी साहित्य की धाराओं को परिभाषित किया था। इसी प्रकार, ध्यान देने योग्य दूसरा पहलू यह है कि उनके साहित्यिक प्रतिमानों में भारतीय सौंदर्यशास्त्रीय चिंतन की दीर्घ समृद्ध परंपरा के बजाय औपनिवेशिक प्रभाव के चलते, पश्चिमी साहित्य चिंतकों के सोच को वरीयता

दी गई है।

शुक्ल जी के *हिंदी साहित्य का इतिहास* को देखिए : वीरगाथा काल में हिंदू राजा आपस में लड़ने के अलावा मुसलमानों के खिलाफ लड़ रहे थे और इसीलिए उस काल की कविता उनके शौर्य का गान करके उनका उत्साह बढ़ा रही थी। भक्तिकाल में मुसलमानों के पैर जमने लगे थे तो हिंदू जनों के लिए अपने दीनानाथ की शरण में जाने के अलावा कोई चारा नहीं रह गया था। उसकी निर्गुणपंथी धारा को शुक्लजी ने अनपढ़-गंवारों की धारा बता दिया। उस पर मुसलमानों का प्रभाव भी सबसे प्रकट था। इसके विपरीत, सगुण पंथ में रामभक्ति शाखा में धनुर्धर राम के जरिये वर्णाश्रम धर्म की श्रेष्ठता बताई और हिंदुओं के हत गौरव को जाग्रत करने की कोशिश की गई और कृष्ण भक्ति शाखा को सूफियों के प्रेमभाव से ग्रसित भक्ति की मूलत: शृंगारिक धारा बताया गया। रीतिकाल में मुगलों का शासन अपने शीर्ष पर था तो हिंदी कविता दरबारी हो गई और संस्कृत काव्यशास्त्र के अलंकारों आदि को अवलंब बना कर रस निरूपण के लिए नायिकाभेद के लक्षण ग्रंथ और रचनाएं आकाओं के मन को रिझाने के लिए लिखी जाने लगीं। और आधुनिक काल का हिंदी साहित्य भी बाजारों की भाषा खड़ी बोली में उर्दू के साथ प्रतिस्पर्द्धा में तैयार हुआ। हिंदी साहित्य के इन सभी कालों में मुसलमानों को उसके एक बाहरी परिप्रेक्ष्य के तौर पर ही अधिक से अधिक रखा गया। शुक्लजी ने जायसी, कुतबन, रहीम से लेकर भक्तिकाल और

रीतिकाल में मुसलमान कवियों को अपने इतिहास में जगह दी है सिर्फ यह बताने के लिए कि उन्होंने किस प्रकार भारत को अपनाया, वे अपनी धार्मिक अस्मिता से स्वतंत्र पहले मनुष्य थे। लेकिन भारतीय बहुलतावाद में इस्लाम के आगमन के प्रभाव को स्वीकारने में उनकी दुविधा हमेशा समान रूप से बनी रही।

इसमें सबसे गौर करने लायक बात है कि जो साहित्य परंपरा प्राकृत और अपभ्रंश के जरिये सिद्धों-नाथों और कबीर, रैदास आदि की रही, उसकी एक अत्यंत समृद्ध दार्शनिक पृष्ठभूमि होनेके बावजूद उसे वज्रयानियों, कापालिकों-तांत्रिकों की उस धारा में खतिया दिया गधा जो शुक्लजी के अनुसार अनपढ़ों और नीची जातियों की धारा थी। कबीर का जिक्र शुक्लजी ने कभी भी उनकी 'अटपटी वाणी' के उल्लेख के बिना नहीं किया। जबकि, भारतीय दर्शन के इतिहास का सच यह है कि शैवमत की यही दक्षिण और कश्मीर की धारा भारतीय दर्शन की सबसे विकसित धारा थी जो वेदांत के नाना रूपों, बौद्ध दर्शन और वैष्णव मत से एक तीव्र विचारधारात्मक संघर्ष के बीच से विकसित हुई थी। शंकर के लगभग तीन सौ साल बाद के अभिनवगुप्त न सिर्फ समय के लिहाज से बल्कि ज्ञान मीमांसा के सभी पैमानों पर उनसे आगे, ज्यादा समृद्ध और विकसित थे। उनके *प्रत्यभिज्ञादर्शन* में जहां हेगेल के सुसंगत भाववादी द्वंद्ववाद को, स्वातंत्र्य की मानव-जीवन की चालिका शक्ति को देखा जा सकता है, वहीं उनके *ध्वन्यालोक* में भारतीय सौंदर्यशास्त्रीय चिंतन के एक अत्यंत विकसित

विकसित रूप को पाया जा सकता है। और सर्वोपरि, इन सात सौ साल में ही सभी भारतीय भाषाओं की इस्लामिक सार्वलौकिकता (Islamic universalism) से अंतर्क्रिया शुरू हो गई थी।

इस प्रकार, सिद्धों, नाथों और कबीर, रैदास की परंपरा अनपढ़ों की नहीं अपने समय के सबसे विकसित, आधुनिक जनों की परंपरा थी। इनकी तुलना में रामचंद्र शुक्ल जिस परंपरा का गुणगान कर रहे थे, उसे यदि किसी अवांतर से हो गए सुदूर अतीत की लकीर पीटने वाले पिछड़े हुए लोगों की परंपरा न भी कहा जाए तो भी वह भारतीय विकासमान परम्परा की नहीं, किसी न किसी रूप में परंपरा की उस नई अस्मिता से जुड़ी हुई थी जिसे औपनिवेशिक शासकों के प्रवेश ने पैदा किया था।

एशियाटिक सोसाइटी और *भारत-शास्त्र* (Indology) के संस्थापक सर विलियम जोंस ने बहुत साफ तौर कहा था कि 'भारत के इतिहास के बारे में इन सभी खोजों में मैं अपने को मुसलमानों की जीत के पहले तक, अर्थात 11वीं सदी के पहले तक सीमित रखूंगा और उसमें जितनी दूर तक पीछे, मानव प्रजाति के बारे में सबसे प्रारंभिक प्रामाणिक तथ्यों तक, जितना जा सकूंगा जाऊंगा' (देखिए : Sir William Jones, *The Third Anniversary Discourse* delivered on 2 February 1786, By the President on the Hindus'):

(Let me here premise , that, in all these inquiries concerning